



लक्ष्मीकान्त वर्मा : साहित्य की अन्य विधाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन

अर्चना मिश्रा

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश

लक्ष्मीकान्त वर्मा ने कविता के लिए सौन्दर्यात्मक संतुष्टि की बात कही है। उनका कथन है कि – “मेरा मतलब है कि वह सौन्दर्यात्मक संतुष्टि मिलनी चाहिए जो कविता के लिए वांछनीय है। शब्दों में अर्थों की व्यंजनायें गूँजे। पदों में समासों, बिम्बों और बिम्बों की प्रतिष्ठायें एक के अनेकतर संदर्भों को उद्घाटित करे और सबसे बड़ी बात यह हो कि सत्य न तो निरामिश हो और न ही इतना अधिक ज्ञागदार हो कि असत्य लगने लगे। यह काम बड़ी साधना का है।

आज का जीवन जितना विषम है कविता भी उतनी ही विषम होगी। जो लोग इसमें वह तराश या खराश ढूँढ़ेंगे या जो इसमें रंगीन तस्वीरें ही ढूँढ़ना चाहेंगी वह जरूर निराश होंगे क्योंकि साहित्य आदमी लिखता है और आदमी वही होता है जो समाज, परिवेश और वातावरण को झेलता है। इस झेलने के साथ यदि कविता निकलेगी तो उसमें खराश होगी और अगर खराश होगी तो खुदुरी होगी, कहीं-कहीं सपाट होगी और कहीं बेबाक भी होगी। मैं इसमें कोई दोष नहीं मानता लेकिन कलाकार के नाते यह जरूर चाहता हूँ कि जो भी खराश कविता में हो वह सिर्फ खराश ही न हो कुछ और भी हो यानी खराश के साथ ढंग हो और यह पता चले कि आप उस खराश को किस रूप में ले रहे हैं और उसका आप इस्तेमाल कर रहे हैं या वह आपके चेहरे पर दाग की तरह है, जखम या नासूर की तरह है।

मूल शब्द : लक्ष्मीकान्त वर्मा, साहित्य, अन्य विधा, विश्लेषणात्मक अध्ययन।

प्रस्तावना

यह एक अच्छी बात है कि आज की कविता में वास्तविक जीवन के संघर्ष का कथ्य उभर कर आ रहा है लेकिन यह भी एक बुरी बात है कि अच्छी बात भी बुरे ढंग से कही जा रही है। वैसे लोग कहते हैं कि सत्य चाहे जैसे भी कहा जाय वह कहना चाहिए लेकिन कहना बात और है, वही सत्य जब लिखा जाये तो ढंग से लिखा जाना चाहिए। लेकिन जो ढंग से गद्य में लिखा जा सकता है जब कविता का विषय बन जाय तो ढंग के साथ-साथ सुन्दर और रुचिकर भी होना चाहिए।¹

कवि लक्ष्मीकान्त वर्मा की मान्यता है कि आज की कविता तीन खतरों से गुजर रही है – पहली मुर्दा विषय-वस्तुओं से जो छाती से चिपकी हैं लेकिन जिनके बोझ को हम मोह वश ढोते हैं। दूसरी जो विषय-वस्तु को छाती से तो नहीं चिपकाये हैं लेकिन जो आँख में और विषय-वस्तु में इतनी दूरी ही नहीं रखते कि आँख सही ढंग से देख सके और तीसरी चीज है किसी भी विषय-वस्तु को आवश्यक दूरी पर रखकर उससे सम्बन्ध स्थापित करने की। पहली दो स्थितियाँ गँवरपन की हैं, नौसिखियों की हैं और ऐसे लेखकों की हैं जो साहित्य में केवल पोस्टरबाजी अपना धर्म मानते हैं। तीसरी स्थिति उनकी है जो संस्कारहीन हैं, जो इतिहास से अनभिज्ञ हैं, जो देश की जलवायु, तापमान, धड़कन, पुरातत्व, धर्म मिथक परम्परा से ही अपरिचित हैं। ऐसा आदमी किसी भी अच्छे-से अच्छे विषय वस्तु को, अनुभूति के गहरे-से गहरे क्षण को, पकड़ नहीं पाता। वह ठीक वैसा ही है कि जैसे चमकीला पत्थर उसे मिल जाय और उसको परखने की उसमें तमीज ही न हो।²

समसामयिक परिवेश में वर्मा जी ने लिखा है कि, इधर कविता ठण्डी है लेकिन कविता की अलख जगाने वाले कई मसीहा पैदा हो गये हैं। उनमें से कुछ तो पुराने हैं और कुछ ऐसे हैं जो नये हैं लेकिन मसीहाई की कला में इतने निपुण नहीं हैं जितने कि होने चाहिए। जो पुराने हैं वह यह भूल गये हैं कि जमाना बदल गया है। अब आप गुलेल से शिकार नहीं कर सकते। जो नये हैं उनमें से कुछ सरकारी अफसर हैं जो कविता के नाम पर रद्दी-सद्दी, सही-गलत, सबको सरकारी मुहर के नाम से चलाना चाहते हैं। इन नयों से मुझे यह कहना है कि भाई इतिहास में दूसरा मोहम्मद

तुगलक नहीं पैदा हुआ क्या अब वह साहित्य में अवतरित होगा। यदि सरकारी खजाने से कुछ कर सकते हो तो लेखकों को राहत दो लेकिन उस राहत को राहत कहो उसे साहित्य का मुहर लगाकर उन समस्त मूल्यों को मत तोड़ो जो साहित्य को बनाते हैं उसे जीवित रखते हैं। स्थिति का व्यंग्य यह है कि यह मसीहे अकेले में एक-दूसरे को गाली देते हैं लेकिन जब साहित्य में फौसले देने होते हैं तो यह एक जुट हो जाते हैं।³

वर्मा जी ने काव्य के सृजन में यह भी स्वीकार किया है कि कविता वहाँ कारगर होती है जहाँ संवाद होता है। संवाद में कविता उजागर होती है। इधर या तो समाज प्रतिबद्ध हो रहा है, या स्तब्ध हो रहा है या केवल अवरुद्ध हो रहा है। प्रतिबद्ध समाज, समाज नहीं सर्कस का जीव है। वह प्रतिबद्ध होता है तो या तो शिकंजों में जीता है या सर्कस मैनेजर के बिजली वाले हण्टर के इशारे से जीता है। उस प्रतिबद्धता का कोई अर्थ नहीं है जिसमें केवल मूल्यों की मुर्दा खाल की दुहाई दी जाती है। प्रतिबद्धता हमेशा गति के साथ होती। समाज को भी उसी गति की सापेक्षता में लेना उचित है और मूल्य तो उस गति के साथ विकसित ही होते हैं।³

कवि का यथार्थ उसका अपने सांस्कृतिक मूल्यों का यथार्थ होता है और वह उसी के माध्यम से उसे देखता है। दण्डकारण्य में चलते-चलते राम जब अस्थि समूह को देखते हैं और पूछते हैं कि यह अस्थियाँ किनकी है और पता चलता है कि वह ऋषियों की है या दूसरे शब्दों में उन मनुष्यों की है जिन्हें राक्षसों ने मारकर यहाँ फेंका है, तो ‘निशचरहीन’ करने का प्रण लेते हैं। राम ने उस यथार्थ को जिस रूप में आत्मसात् किया वह प्रण का था लेकिन जिस कार्य ने उसका साक्षात्कार किया उसमें राम और राम के साथ राम का रामत्व भी शामिल था और था उसके साथ उसका निर्णय जिसे वह ‘निशचरहीन’ करने के प्रण के साथ राम से कहलवाता है। कवि का यथार्थ उसके सौन्दर्य का यथार्थ होता है, बनते-बिगड़ते मूल्यों का यथार्थ होता है, उन सांस्कृतिक स्तरों का यथार्थ होता है, जो सारी संवेदनाओं को मूल्यों के धरातल तक ले जाता है और कभी-कभी उनके तरतीबों को बदलने की प्रेरणा भी देता है।⁴ आज कुछ ऐसी परम्परा चल पड़ी है कि साहित्यिक कृतियों का मूल्यांकन करते समय कृति की मौलिक अच्छाई या बुराई करने की

अपेक्षा सारा बल कृतिकार के व्यक्तित्व पर दिया जाता है। रचना पढ़ने के पहले रचनाकार का नाम, उसका वर्ग और उसकी राजनीतिक मान्यताओं का एक 'रेडी रेकनेर' जैसा प्रत्येक आलोचक के पास होता है। रचना से पहले नाम पढ़कर वह सब खाने अपने-आप बना लेना उसके लिए स्वाभाविक हो जाता है। उसके बाद उस पर सम्मति भी फलस्वरूप अपने-आप निकल आती है। कुछ आलोचकों के बारे में तो यहां तक सुना जाता है कि उनके पास कई प्रकार की नामावलियां होती हैं। वह पहले से ही रचना के बारे में सोचे बैठे रहते हैं। श्री की रचना है, तो बस उन्होंने जैसे वह नामावली उठायी और 'कुण्डाग्रस्त', 'पतनोन्मुख', 'अहंवादी' आदि शब्दावली जोड़ी और आलोचना समाप्त कर दी। ऐसे आलोचकों का यह मत है कि वह अत्यन्त निरासक्त भाव से सम्पूर्ण रचना पर विचार करते हैं। अपने बही-खाते के रोकड़-बही के समान, जो भी लेखक या रचनाकार अपनी जितनी 'क्रेडिट' उनके दरबार में लिखाये रहता है, उसके अनुसार ब्याज, छूट और माफी उसे मिलती रहती है। इस प्रकार की आलोचना बड़ी ही छिछली स्तर पर प्रायः सभी पत्रिकाओं में मिल जायेगी। पता नहीं ऐसी आलोचनाओं का क्या महत्व होता है, लेकिन सरगरी खूब रहती है। मान, प्रतिष्ठा भी इसी प्रकार बढ़ती है।¹⁴

जब किसी साहित्यकार के सामने नये मूल्यों, नये प्रतिमानों या नये धरातलों या आयामों की बात की जाती है तो वह उससे चिढ़ जाता है। एक तरुण नाटककार एवं कहानीकार ने - (जिनकी पी-एच. डी. की थीसिस ही कहानी के शिल्पविधान के विकास पर है) एक कहानी-पत्रिका में नयी कहानी की चर्चा करते हुए यह घोषित किया है कि उपर्युक्त शब्दों का कहानी से कोई सम्बन्ध नहीं है। कहानी नयी या पुरानी नहीं होती। शायद उसके लिए न तो नये मूल्यों की समस्या है न नये भाव-बोध की। इसलिए ही यह सब निरर्थक शब्द-जाल है। अब ऐसे कवि जो पागलपन, मूर्खता और बहकाव को सर्वश्रेष्ठ मूल्य मानते हैं और ऐसे कहानीकार को जो कहानी को आज भी इतिवृत्तात्मक शैली में 'चन्द्रकान्ता सन्तति' से आगे नहीं विकसित होने देना चाहते, किस आधार पर सही माना जाये। यदि एक ओर 'पागलपन' को गुण मानकर कवि के मानव-व्यक्तित्व का अपमान किया जाता है तो दूसरी ओर जितना 'नया' है उसकी निंदा करके उसके विकसित ज्ञान और बौद्धिकता का। दोनों ही जीवन को अस्वीकार करते हैं और विवेकपूर्ण अस्तित्व की अवहेलना करके जो वस्तु-स्थिति है, युगों-युगों की विकसित उपलब्धि के रूप में हमें मिला है, उस सबका तिरस्कार करके साहित्य की गतिविधि को पंगु या पीछे की ओर ले जाना चाहते हैं। इनसे कैसे कहा जाये कि तथाकथित मानवतावाद असंयमित भावुकता है और निर्दलीय होना पानी के फूल बनाने के समान है। ये पानी के फूल केवल कल्पना में ही रहते हैं। मात्र आंसू से साहित्य जैसे नहीं बन पाता उसी प्रकार मात्र भावुकता से विगलित हो जाने से कोई उपलब्धि नहीं होती। जो अजस्र झोट चट्टान तोड़कर बहता है वह बिना नयी अभिव्यक्ति के, दर्द के, प्रवाहित नहीं हो सकता। चाहे जिस क्षेत्र में सृजन किया जाये-कहानी, कविता, नाटक, आलोचना या अन्य कोई माध्यम, उसमें इस वेदना का होना आवश्यक है। फिर यह दृष्टि की वेदना और उसका साक्षात्कार अराष्ट्रीय कैसे होगा? यह तर्क कम से कम मेरी समझ में नहीं आता।

साहित्य और कला के क्षेत्र में राजनीति भी कभी-कभी बड़ी सरगरी से आ जाती है। अनावश्यक रूप से जब कभी भी राजनीति साहित्य के क्षेत्र में अपना अस्तित्व जमा लेती है तब साहित्य के मूल्य और उनका सम्भावित मन्तव्य भी भ्रम में पड़ जाता है। साहित्य में राजनीति का पक्ष केवल सूक्ष्म रूप में व्यापक जीवनवृत्त के आधार पर ही मानवीय संवेदनाओं के साथ आ सकता है और ये संवेदनाएं मानवतावाद और मानवीय सद्भावनाओं की ही प्रेरक हो सकती हैं ; उनमें कोई राजनीतिक सिद्धांत नहीं ढाला जा सकता। यद्यपि सामाजिक तत्वों की जीवन्त परमाणुओं को साहित्य सदैव अपने में

समाहित करता आया है फिर भी राजनीति के खुरदुरे रूप (क्रूड फॉर्म) की उपेक्षा ही कला और साहित्य के स्वतन्त्र विकास के लिए आवश्यक है। लेकिन साहित्य में राजनीति का विकृत रूप लाकर नयी शंकाओं और आपत्तियों का विकास भी हो रहा है जो साहित्यिक समीक्षा के स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए बाधक है।¹⁵ वर्मा जी का कथन है कि सब कुछ हिन्दी में पुस्तकों की समीक्षा का स्तर निश्चय ही गिर गया है और उसमें मूल विवेचन की अपेक्षा आलोचक की समस्त त्रुटियां और व्यवहार-पटुता स्पष्ट दीखाई पड़ती है। ऐसा लगता है कि आज का हिन्दी पुस्तक-समीक्षक किसी भी हालत में न तो अपने को खुलकर समीक्षक कहलाने का साहस रखता है और न उसमें विचारों और मान्यताओं की ऐसी पकड़ ही है जिनसे वह किसी भी पुस्तक की कसकर समीक्षा करे और उस समीक्षा के फलस्वरूप वह पुस्तक पर कोई फैसला दे सके।

वास्तव में आज की स्थिति यह है कि समस्त समीक्षा-शैली ही तीन चक्कियों में पिसकर निकलती है। एक चक्की प्रकाशक की है, जिसमें किसी भी खराब से खराब पुस्तक की समीक्षा बड़े से बड़े नामधारी समीक्षक से लिखवा लेने की क्षमता होती है। दूसरी चक्की निर्दलीय समीक्षकों की है जिनके लिए पुस्तक-समीक्षा से अधिक मूल्यवान अपना निर्दलीयपन स्थापित करना होता है। तीसरी चक्की गुमनाम समीक्षक की है। यह नहीं पता चल पाता कि कब, कौन उसका शिकार बन जायेगा। यह तीनों चक्कियाँ एक साथ भी बहुधा समीक्षकों में काम करती हैं? और जब वे प्रकट होती हैं तो साहित्य का निबटारा तो कर ही देती हैं, साथ ही भ्रम के कीटाणु भी बड़ी कुशलता से फैला देती हैं।

इन सबका परिणाम यह हुआ है कि पुस्तक-समीक्षा का स्तर तो पतनशील हो ही गया है, साथ ही धीरे-धीरे अब पाठक वर्ग को इस प्रकार की पुस्तक-समीक्षा से वितृष्णा भी हो गयी है। सोने पे सोहागा का काम तो इस गोपनीयता ने कर दिया है, क्योंकि इस गोपनीयता से यह नहीं पता चलता कि पुस्तक की समीक्षा करते हुए अच्छी या बुरी राय किसी योग्य और अधिकारी व्यक्ति द्वारा दी गयी है, या किसी ऐसे ही वैसे लिखे गये समीक्षक की है।

साहित्य, यदि वह समीक्षा-सम्बन्धी हो या रचना-सम्बन्धी, लेखक-विचारक से कुछ नैतिक साहस की मांग करता है। बिना इस साहस के विचारशील साहित्य का लिखना या विकसित होना सम्भव नहीं हो सकता। पुस्तक मुख्यतः विचार-प्रधान कृति है। विचारों से असहमत होना एक स्वस्थ बात है, लेकिन असहमति को छिपाना गलत बात है। इसीलिए शील की ओढ़नी ओढ़कर कहीं किसी को बुरा न लगे, इसलिए मौन रहना उतना ही घातक है जितना प्रतिशोध और कायरता-भरी आलोचना करना। यह सत्य है कि लेखकों और विचारकों में अपना विरोध सह सकने का सामर्थ्य होना चाहिए। लेकिन अनर्गल विरोध, गन्दे विरोध और कलुषित विरोध को शीघ्र से शीघ्र समाप्त भी कर देना चाहिए।¹⁶

स्वतंत्रोत्तर युगीन रचनाकार लक्ष्मीकान्त वर्मा जी का चिन्तन रहा है कि मेरी अनुभूतियों के बीच से दो प्रकार की दुनिया और गुजर गई है। एक आजादी के पहले की दुनिया और एक आजादी के बाद की दुनिया, एक आजादी के पहले की भाषा, उसके मुहावरे और बिम्ब, उसके प्रतीक और एक आज की दुनिया के। दोनों की टकराहटों का मैं साक्षी हूँ, जबकि आजादी के बाद की जो पीढ़ी आई है उसके पास यह सारा सब कुछ स्मृति और श्रुति के रूप में आई। स्मृतियों और श्रुतियों में केवल अतीत बोलता है। वर्तमान उससे छुटा हुआ रहता है।¹⁷

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के फलस्वरूप यह तथ्य प्रत्यक्ष होता है कि कविता के माध्यम से हम एक साथ वह सब जीते हैं जो जीवन को विषम और कटु बनाते हुए भी एक ऐसा आधार देते हैं कि जो हमें साहस और सहारा के साथ-साथ वह जिजीविषा भी दे सके, जिसमें सब

कुछ होने के बावजूद सारी दुर्घटनाओं में चूर-चूर होने के बावजूद फिर से चलने की क्षमता शेष रहती है।

'कंचन मृग' वर्मा जी का काव्य संकलन है। कंचन मृग की कवितायें एक विस्तृत परिधि में बिखरी हुई अनुभूतियों का संचयन है। जिस प्रकार संघर्षरत मेरा जीवन है उसमें इतनी भी निश्चिन्तता मिलना कठिन है कि मैं इन सारी कविताओं को उस रंगसाजी तरतीब से आपके सामने रखता कि जो ज्यादा रुचिकर लगतीं। जैसा मैंने कहा यह सारी कवितायें यत्र तत्र मेरे चारों ओर बिखरे अस्त-व्यस्त कागज के टुकड़े, अखबार के पन्ने और कहीं-कहीं तो परचून के दुकान की चिन्दियों से उतारी गई हैं। युग ऐसा है कि गद्य अधिक चलता है। जीने के लिए और "फादर चिम्पैंजों की तरह किसी खोह में अपने परिवार को सुरक्षित और जीवित रखने के लिए, मुझे अनेक यत्न करने पड़ते हैं। उसमें कविता आती है चली जाती है। जब तब लिखने का अवसर मिलता है तो लिख भी जाती है लेकिन वैसी नहीं जिसमें रंगीचुनी मिले इसलिए आपसे एक ही अनुरोध है कि पढ़ने और उनको तरतीब देने का काम आप स्वयं करें। मुझे विश्वास है आप मेरे लिए इतना कष्ट गँवारा करेंगे।⁸

'कंचन मृग' काव्य संकलन में कवि वर्माजी की कुल 53 कविताएँ संग्रहित हैं। कंचनमृग से आरम्भ होकर इनकी कविता जिज्ञासा में अवसान पाती है। आदि कवि महर्षि बाल्मीकि ने रामायण में कंचनमृग के लीला भाव को ललित प्रसंग से करुणा तक पहुंचाया था। व्यास ने उसे महाभारत की विसंगतियों से उठाकर कलियुग की व्याख्या के लिए इस्तेमाल किया। किन्तु कवि वर्मा जी का मन्तव्य है कि मैंने केवल अपने युग के मारीच और उसके संदर्भ में प्रतिबिम्बित करने की कोशिश की है। इस प्रकार मैं यह समझ सकती हूँ कि तीनों का कवि एक ही है। संवर्ग भेद-युग का है। लक्ष्मीकान्त वर्मा के अन्य गथात्मक विधाओं में आलोचना, नाट्य शिल्प, एकांकी शिल्प, स्फुट एवं प्रकीर्ण साहित्य, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख उल्लेखनीय हैं।

अनुशीलनोपरान्त मैं यह कह सकती हूँ कि प्रो. लक्ष्मीकान्त वर्मा ने निकष, नये प्रतिमान, पुराने निकष, नयी कविता के प्रतिमान, कविता और कविता, एक गाथा, यदि मैं मेयर होता, माया, दर्पण, हिन्दी कविता-मगध में समीक्षा, आलोचना आदि का सफल निर्वाह हुआ है। प्रो. वर्मा ने आलोचना, निकष, प्रतीक, हंस, राष्ट्रवाणी, दिनमान, धर्मयुग, अभिप्राय आदि विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में अपने समग्र साहित्य के मर्म को उद्घाटित किया है। उनके लिए आलोक वर्मा के निवास मधवापुर, इलाहाबाद में सम्पर्क करने पर ज्ञात हुआ कि उनके पिता श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा की कुछ अप्रकाशित एकांकी, निबन्ध, नाटक, आत्मकथा, प्रकीर्ण साहित्य, डायरी, संवाद, पत्र सम्प्रेषण प्रविधि, कुछ कहानियाँ भाषण, आज भी आवास पर सुरक्षित हैं। सम्पर्क के फलस्वरूप आलोक वर्मा जी ने यह भी बताया कि 'लोक भारती' प्रकाशन इलाहाबाद से प्रकाशनार्थ चर्चा हुई है। 'कंचनमृग' काव्य संकलन का प्रकाशन मृत्योपरान्त हुआ है। शेष साहित्यिक स्मृतियाँ प्रकाशित किया जाना है।

निष्कर्षतः यह कहना समीचीन होगा कि लक्ष्मीकान्त वर्मा की साहित्यिक चिन्तन दृष्टि विविध आयामों में नयेपन के साथ प्रस्तुत किया गया है। वर्मा जी के साहित्य की समग्र विधाओं का विश्लेषण और मूल्यांकन मानवीय संवेदनाओं का संस्पर्श करता हुआ प्रतीत होता है। अभिव्यंजना शिल्प के संदर्भों में बिम्ब, प्रतीक, चित्र, छंद, भाषाशिल्प, सौन्दर्यगत भाषिक मूल्यों को लेकर प्रतिष्ठित हुआ है।

सन्दर्भ

1. कंचनमृग-अपनी बात : आज की कविता के साथ, पृष्ठ 9, लक्ष्मीकान्त वर्मा.
2. कंचनमृग-अपनी बात : आज की कविता के साथ, पृष्ठ 9-10, लक्ष्मीकान्त वर्मा.
3. कंचनमृग-अपनी बात : आज की कविता के साथ, पृष्ठ 11, लक्ष्मीकान्त वर्मा.

4. मूल्यांकन : पूर्वग्रहया अन्वेषण, पृष्ठ 109, लक्ष्मीकान्त वर्मा.
5. आधुनिक हिन्दी समीक्षा : कुछ व्यवहारिक कठिनाइयाँ, पृष्ठ 117, लक्ष्मीकान्त वर्मा.
6. आधुनिक हिन्दी समीक्षा : कुछ व्यवहारिक कठिनाइयाँ, पृष्ठ 121-123, लक्ष्मीकान्त वर्मा.
7. कंचन मृग, पृष्ठ 23, लक्ष्मीकान्त वर्मा.
8. कंचनमृग-अपनी बात : आज की कविता के साथ, पृष्ठ 24, लक्ष्मीकान्त वर्मा.